Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 02, July-December 2021
http://swarsindhu-pratibha-spandan-org
© The Author(s) 2021
A UGC CARE listed Journal

मंचीय संगीत का ऐतिहासिक विकास क्रम तथा आधुनिक स्वरूप

DR. ANAYA THATTE
Assistant Professor, Department of Music, University of Mumbai

सारांश

संगीत और रंगमंच का नाता जाने कितने बरसोंका पुराना है। संगीत कला का समावेश ही प्रस्तुतीयोग्य कलाओंमें होने के कारण इसके मूल उद्देश को विकसित करने हेतू ही सभी काल में इस कला का विकास हुआ। सर्वप्रथम प्राचीन काल में नाटकोंमें रंजन हेतु इसका प्रयोग तत्कालीन रंगमंच पर किया गया। उस समय नाटक में नाटय को प्राथमिक तथा संगीत को दुय्यम स्थान प्राप्त था। भरत के नाटयशास्त्र में संगीत का सर्वप्रथम उल्लेख हमें नाटय के संदर्भ में ही प्राप्त होता है। तदोपरांत शनैः शनैः इस कला का विकास होता गया और एक ऐसा समय आया जब नाटकों में ही संगीत की अहम् भूमिका रहने लगी। लोक संगीत तथा शिष्ट संगीत दोनों ही विधाओं में संगीत नाटकोंके रूप में संगीत मंच पर विराजमान रहा। आगे चलकर स्वतंत्र विधा के रूप में संगीत का जब विकास हुआ, तब संगीत की विविध शाखाओं के माध्यम से लोकरंजन के लिए केवल संगीत का मंचीकरण हुआ। आज स्वतंत्र रूप में लोकप्रिय संगीत, लोक संगीत, शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत आदि के कार्यक्रमों का आयोजन व्यावसायिक रूप में मंचोंपर किया जाता है। रंग संगीत से मंच संगीत तक के इसी विकासक्रम के बारे में प्रस्तुत शोधपत्र में चर्चा की गयी है।

सूचक शब्द- रंगमंच, संगीत, संगीत नाटक, लोकनाटय, व्यावसायीकरण।

प्राचीन कालीन संगीत का विकास

अतिप्राचीन काल में सृष्टी की निर्मिती के समय मनुष्य को अपने मनोभावों केा व्यक्त करने के लिए किसी विशेष भाषा की आवश्यकता महसूस हुई और उसने सृष्टी में ही विचरित अनेक स्वरोंका अनुकरण करने का प्रयास किया तथा उनका परिमार्जन किया। इन्हीं स्वरों के परिमार्जित स्वरूप ने ही मानव को संगीत के स्वर और भाषा दी। ग्रंथोंमें प्राकृतिक परिवेष में विविध पशु पक्षियों के ध्वनि से संगीत के सप्तस्वरोंकी उत्पत्ती के संदर्भ हमें प्राप्त होते है। प्राचीन काल में संगीत का विकास देशी तथा मार्गी के रूप में हुआ। इन दोनों संगीत प्रकारोंमें प्रस्तुती के उद्देश तथा नियम बद्धता का महत्वपूर्ण अंतर था। यही कारण था कि शुद्ध स्वरूप का मार्गी संगीत ईश्वर की ओर ले जानेवाले, अर्थात् मोक्षदायी संगीत माना गया। जिसकी प्रस्तुती तथा उच्चारण के कडे नियम थे और उनका पालन करना आवश्यक समझा जाता था। आचार्य रातंजनकर जी के अनुसार मार्ग संगीत वह है, जिसको देवतादिकों ने संशोधित कर के शास्त्र बद्ध किया, जिसका प्रयोग भरतादिकों ने शिवजी के सम्मुख किया। शारंगदेव के अनुसार देश प्रदेशों में सर्वसाधारण जनता की अभिरूचि के अनुसार होते हुए जो जनता का चित्तरंजन करने वाला गायन, वादन, नृत्य होता है, उसे देशी संगीत कहा जाता है। मार्गी संगीत आगे चलकर भी नियमों के आधीन ही रहा, परंतु देशी संगीत के स्वरूप में काल क्रमानुसार बदलाव होते गए। इसी का विकास होते होते आज के संगीत का स्वरूप हमें प्राप्त होता है।

प्राचीन ग्रंथों में संगीत के उल्लेख

प्राचीन परंपरा में वैदिक साहित्य का स्थान सर्वविदीत है। कहा जाता है, कि इन चार वेदोंके साथ ही बह्मा ने समस्त मानवों के मनोरंजनार्थ नाटयवेद की निर्मिती की, जिसमें सभी वेदों से कुछ ना कुछ घटक लिए गए। सामवेद से नाटयवेद में संगीत को लाया गया। नाटक में संगीत से भावपूर्ण वातावरण की निर्मिती होती है, जो नाटक को अपनी चरमसीमा पर

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 02, July-December 2021
http://swarsindhu-pratibha-spandan-org
© The Author(s) 2021
A UGC CARE listed Journal

ले जाती है। बिना संगीत के नाटक की कल्पना ही करना संभव नहीं है। प्राचीन कालीन संगीत का विवेचन करनेवाला सर्वप्रथम ग्रंथ भरत का नाटयशास्त्र माना जाता है। यह ग्रंथ साधारणतः दूसरी से पाँचवी शताब्दी में लिखा गया। हाँलाकि यह ग्रंथ पूर्णतः नाटयविवेचन का ग्रंथ है, परंतु नाटय में जहां भी संगीत के संदर्भ आते हैं, उनका विस्तृत विवेचन नाटयशास्त्र में किया गया है। इसमें संगीत की चर्चा नाटय के अंग के रूप में की गयी है। भरत की नाटय परंपरा में संगीत और नाटक का गहरा संबंध पाया जाता है। नाटय के सफल मंचन के लिए नेपत्थ्य में ध्वनि नियोजन तथा गीत संगीत का प्रयोग अनिवार्य है। प्राचीन काल में कंठ, हाथ, पैर तथा वाद्ययंत्रों द्वारा ध्वनिर्मिती की जाती थी। अर्थात ध्वनि का तात्पर्य, कोलाहल ना होकर सांगितिक ध्वनि होने के कारण अपनेआप ही संगीत से नाटक का संबंध गहरा होता था। नाटयशास्त्र के प्रकरण 28 से लेकर 32 में विविध सांगितिक संकल्पनाओंका विवेचन दिया गया है। भरत ने रंगमंच या प्रेक्षागृह के विकृष्ट, त्रयस्त्र तथा चतुरस्त्र प्रकार बताए है। इनके उपप्रकारोंके साथ ही कुल मिलाकर देव, राजा तथा प्रजाजनोंके लिए नौ नाटयमंडपों का उल्लेख किया है। भरत के साथ उनके परावर्ती विद्वानों ने भी रंगमंच के कुछ अनिवार्य तत्व बताए है, जिनमें पाश्र्व ध्वनि तथा संगीत संयोजन महत्वपूर्ण है। आधुनिक युग में भी अन्य तत्वों के साथ इनका रंगमंच के महत्वपूर्ण तत्वों में समावेश होता है। सफल अभिनेता के गुणों में अभिनय के साथ साथ नृत्य तथा गायन में कुशलता का भी समावेश होता था। भरत ने रंगभूमी का उल्लेख नहीं किया है। भरत के अनुसार मंच पर अभिनेता अपने अभिनय कौशल्य से रस की भावानुभूती श्रोताओंको प्रदान करता है। इस रसोत्पत्ती के लिए संगीत एक माध्यम के रूप में काम करता है। संगीत के स्वरों द्वारा विविध रसोत्पत्ती के सिद्धांत के बारे में भी भरत ने विस्तार से बताया है। मात्र यह कार्य संगीत के कलाकारों को निर्देशक की सूचना के अनुसार ही करने की अनुमति होती थी। निर्देशक की सूचना अनुसार नाटय में गीत तथा वाद्य वादकोंके नियोजन के लिए एक संगीत प्रबंधक की नियुक्ति होती थी। गीत का प्रयोग नाटक में करते समय प्रबंधक को लय, राग, ताल, छंद, मात्रा, काल का उचित ध्यान रखना पडता था। भरत ने पाश्र्वगायन तथा पाश्र्व वादन के लिए कुतुप के नामांतर्गत वाद्यवृंद के तीन भेद बताए है। नाटय प्रस्तुती में प्रारंभ में अनुष्ठान होता था, जेा देवी देवताओं को आवाहन करने का विधी था। इसमें संगीत का उपयोग किया जाता था। भरत के पश्चात दत्तिल, कोहल, तथा मतंग के ग्रंथेां में भी संगीत के विस्तृत संदर्भ प्राप्त हेाते है। इन ग्रंथों में संगीत के संदर्भ नाटय से जुडे नहीं है, अपितु वह स्वतंत्र सांगीतिक संदर्भ है। प्राचीन नाटकों में नियमोंका पालन आवश्यक था परंतु आधुनिक नाटकों में अब यह नहीं देखा जाता। आधुनिक नाटकों में केवल भारतीय ही नहीं, अपितु विश्व के सभी प्रांतों के संगीत का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाता है।

नाटक में संगीत की योजना का उद्देश्य

नाटय में संगीत की योजना द्वारा नाटक के दृश्य अधिक प्रभावी रूप से प्रस्तुत होते है। किसी भी दृश्य परिवर्तन के बीच संगीत का उपयोग किया जाता था। हर नाटयमय परिस्थिती का उत्कर्ष संगीत द्वारा हासिल किया जाता था। नाटक में संगीत के कलाकारों का दायित्व नाटक केा चरमोत्कर्ष की सीमा तक ले जाना, कथानक को आगे बढाना, पात्र द्वारा अभिनित भावनाओं को सुचारू रूप से श्रोताओं तक पहुंचाकर नाटक का प्रभाव बढाना आदि बताया गया है। प्राचीन काल में मूल गद्य नाटक में संगीत की योजना रसवर्धन के लिए की होती ही थी, परंतु संगीतिकाओं के माध्यम से नाटक में संगीत का प्रयोग अधिक सटीक और व्यापक रूप में होने लगा। संगीत प्रधान नाटकोंका मंचन आसान नहीं था। इनमें पूरे नाटक को आकर्षक बनानेकी जिम्मेदारी संगीत दिग्दर्शक की थी। इन नाटकेांमें रचनाकार, संचालक, संयोजक, नियंत्रक, व्यवस्थापक आदि सभी में निपुण संगीत दिग्दर्शक की आवश्यकता होती थी। प्रारंभिक काल में यह नाटक

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 02, July-December 2021
http://swarsindhu-pratibha-spandan-org
© The Author(s) 2021
A UGC CARE listed Journal

संस्कृत में होते थे, मात्र परावर्ती काल में अन्य भाषाओंमें भी इनका विकास हुआ। कालिदास के तीनों नाटकोंमे गीतों का प्रयोग किया गया है। संस्कृत भाषा में चली आ रही नाटकोंकी शतकोंकी परंपरा, मध्यकाल में नष्टप्राय सी हो गयी। प्रांतीय भाषा में नाटक मंचित होने लगे। सर्वप्रथम कानडी रंगभूमी पर छंद, राग काव्यबध्द इन नाटकोंका प्रचार प्रसार हुआ जिससे प्रेरणा लेकर गुजराती, पारसी तथा मराठी रंगभूमी पर भी संगीत नाटकोंका विकास हुआ। इनमें भी पारसी मंच पर प्रस्तुत संगीत नाटकों में उपशास्त्रीय संगीत, गझल तथा शेरोशायरी का उपयोग अधिक मात्रा में दिखाई देता है, परंतु मराठी रंगभूमि पर प्रस्तुत होनेवाले नाटकों में साकी, दिंडी, आर्या आदि कीर्तन की साहित्यसामग्री का उपयोग अधिक मात्रा में किया गया। तदोपरांत शास्त्रीय संगीत की घरानेदार बंदिशें, उत्तर भारत का कजरी, चैती लोकसंगीत का भी मराठी रंगभूमी पर संगीत नाटकों के लिए उपयोग किया गया। मराठी रंगभूमी की संगीत नाटकोंकी यह परंपरा आज भी महाराष्ट्र के वैशिष्टय के रूप में लोकप्रिय है। इसप्रकार देश के सभी प्रांतों में परावर्ती काल में चाहे लोकसंगीत के रूप में हो या शास्त्रीय संगीत के, रंगमंच पर नाटकों के लिए संगीत का उपयोग बढने लगा और मंच से संगीत इस प्रकार जुड गया कि संगीत के कार्यक्रमों के मंचन की परंपरा भी अधिक विकसित होने लगी। संगीत नाटक के विविध पदों की प्रस्तुति के कार्यक्रमों का आयोजन भी होने लगा, जिसमें नाटय के भाग को निकालकर मैफल के रूप में केवल संगीत की प्रस्तुती होती है।

लोकपरंपरा के मंच पर संगीत

लोक संस्कृति आदीम संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। लोक संस्कृति के विकास के साथ साथ ही शिष्ट संस्कृति का विकास हुआ। लोक में जो संस्कृति अस्तित्व में थी, उन्हीं के घटकों को परिष्कृत कर शिष्ट संस्कृति का विकास हुआ। इसी कारण इन दोनों संस्कृतियों में आपसी लेनदेन नित्य ही चलती रही। प्राचीन कालीन नाटकों में रंजकता हेतु जिस संगीत का उपयोग किया गया, उसमें लोक संस्कृति से जुडे हुए संगीत का भी समावेश था। भरतमुनि ने नाटयशास्त्र में लोकचित्त को नाटक की वास्वविक प्रेरणा भूमि और कसौटी माना है। उत्तर भारत की रामलीला, रासलीला, नौटंकी, पंजाब, राजस्थान तथा हरियाणा का स्वांग, मध्यप्रदेश के माच, बंगाल में यात्रा, महाराष्ट्र में लळित, तमाशा, गोंधळ, दशावतार, पूर्वी जिलों में बिदेसिया, गुजरात का भवाई, केरल का कृष्णाट्टम्, दक्षिण का यक्षगान, विथी नाटकम् आदि में प्रांतीय संगीत का भरपूर उपयोग किया गया है। इन लोकनाटयोंका विशेश यह है, कि इनकी प्रस्तुती खुले रंगमंच पर होती है। जहाँ भी इनकी प्रस्तुती हो, वह जगह रंगमंच बन जाती है। लोक नाटकोंकी उत्पत्ती का प्रमुख कारण धार्मिक भावनाऐं है, जिसमें लोकसंगीत का अनायास ही उपयोग किया जाता है। लोक उत्सव, मांगलिक पर्व तथा धार्मिक अवसरोंपर यह नाटक अभिनित होते है। आधुनिक युग में इन्हीं अवसरों पर लोकनाटय, जिनमें संगीत एक अपरिहार्य अंग है, उनका भी मंचीय प्रदर्शन किया जाता है। इस तरह लोक संस्कृति के जतन संवर्धन में लोक संगीत तथा लोक नाटयों के मंचीय प्रदर्शन का महत्वपूर्ण सहभाग है।

षास्त्रीय परंपरा में मंचीय संगीत

आधुनिक युग का मार्गी संगीत है, शास्त्रीय संगीत। शास्त्रीय संगीत की परंपरा में कलाकार का पहला मंचीय प्रदर्शन होना बडे गर्व का अवसर माना जाता है। पारंपारिक पद्धती से संगीत सीखने वाले शिष्यों को इस अवसर का लाभ तभी होता है, जब उनके गुरू द्वारा उन्हें मंच प्रदर्शन की अनुमति प्राप्त होती है। इसके लिए उन्हें कडी मेहनत और रियाज करना पडता है। जब शिष्य मंच प्रदर्शन के लिए पूरी तरह से तैयार है ऐसा विश्वास गुरू को निर्माण होता है, तब ही उसका पहला मंच प्रदर्शन मान्यवर अतिथीयों के समक्ष किया जाता है। कार्यक्रम के उपरांत उस शिष्य के कला प्रदर्शन पर

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 02, July-December 2021
http://swarsindhu-pratibha-spandan-org
© The Author(s) 2021
A UGC CARE listed Journal

टिप्पणी करने का अधिकार भी गुरू तथा अन्य मान्यवरोंको होता है, और इसप्रकार सभी संगीत प्रेमियों की उपस्थिती में शिष्य का विधिवत् संगीत जगत में कलाकार के रूप में प्रवेश हेाता है। गुरू तथा शिष्य दोनों के लिए यह एक गौरव का अवसर होता है। आगे शिष्य को उसकी काबिलीयत के अनुसार मंच प्रदर्शन के अवसर अपने आप प्राप्त होते है।

शास्त्रीय परंपरा में मंचीय संगीत के कार्यक्रमों के आयोजन के लिए आज आंतरराष्ट्रीय स्तर से लेकर स्थानीय स्तर पर हजारों संस्थाऐं कार्यरत है। इसमें सरकारी, गैरसरकारी सभी संस्थाओं का समावेश होता है। साधारणतः दो से तीन घंटे की अवधि में इन कार्यक्रमों की प्रस्तुति होती है। विविध राष्ट्रीय स्तर के महत्वपूर्ण अवसर, जैसे नेताओं की जयंति, पुण्यतिथि, राष्ट्रीय त्यौहार, आदि प्रसंगों पर संस्कृति प्रदर्शन में ऐसे आयोजन किए जाते है। देश की बडी बडी गैर सरकारी संगीत के प्रचार प्रसार के उद्देश से प्रेरित संस्थाओं द्वारा नियमित रूप में संगीत महोत्सवों का आयोजन किया जाता है। इन महोत्सवों को श्रोतृवर्ग हजारों की संख्या में उपस्थित रहकर संगीत का आनंद लेते है। साधारणतः ऐसे बडे महोत्सवों में संगीत की उच्च श्रेणि के कलाकारों को ही कलाप्रस्तुति के लिए आमंत्रित किया जाता है। इन महोत्सवों के आयोजन में किए गए निवेश की प्रतिपूर्ती की योजना को ध्यान में रखकर ही पूर्णतः व्यावसायिक हेतू से इन कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। स्थानीय स्तर पर भी हर शहर तथा गाँवों में छोटी छोटी संस्थाऐं कार्यरत होती है, जो अपनी अपनी आर्थिक क्षमता के अनुसार कलाकारों को आमंत्रित कर उन्हें कला प्रस्तुती के लिए मंच प्रदान करती है।

संगीत के मंचीय कार्यक्रमों में भी आज संकल्पनाओंकी विविधता दिखाई देती है। केवल एक ही कलाकार का कार्यक्रम तीन घंटे करने की जगह उसी अवधि में दो या अधिक कलाकारोंको प्रस्तुत किया जाता है। इसमें भी एक कलाकार पूर्णतः शास्त्रीय संगीत प्रधान तथा दूसरा उपशास्त्रीय संगीत से जुडा हुआ हो तो अधिक श्रोताओं को आकर्षित करने में आयोजक यशस्वी होते है। किसी विशेष संकल्पना, जैसे, रागांग, राग एवं ऋतु, विविध तालों में बंधी बंदिशें, किसी विशिष्ट वाग्गेयकारों की बंदिशें, विशिष्ट घराने से संबंधित कार्यक्रम श्रोतोओं की विशेष प्रशंसा के पात्र हो रहे है। संगीत के प्रशिक्षित तथा अप्रशिक्षित दोनों तरह के श्रोता वर्ग को मानसिक आनंद की प्राप्ती कराने के हेतु में ऐसे कार्यक्रम सफल होते है। संगीत के प्रचार प्रसार तथा मनोरंजन के साथ ही मंचीय कार्यक्रमों का एक उद्देश इनके द्वारा अर्थार्जन करना यह भी होता है। जिसके द्वारा आयोजक, संगतकार, कलाकार तथा मंचीय कार्यक्रमों से संबंधित अन्य व्यावसायिकों को भी आजीविका प्राप्ती के स्थायी मार्ग उपलब्ध हो रहे है।

आधुनिक मंचीय संगीत

आधुनिक युग में मंचीय संगीत में सर्वाधिक प्रयोग हो रहे है। चाहे वह शास्त्रीय संगीत हो, सुगम हेा या फिर लोकप्रिय संगीत। मूलतः संगीत का विकास प्रस्तुतीकरण के उद्देश से ही होने के कारण आज संचार माध्यम तथा अन्य तकनीकी विकास के कारण हम मंचीय संगीत के क्षेत्र में बडी क्रांती का अनुभव कर सकते है। व्यावसायिक स्तर पर इन कार्यक्रमों का आयोजन होने के कारण संगीत के अलावा अन्य घटकों का महत्व भी अधिक मात्रा में बढ गया है। आज संगीत क्षेत्र हर व्यक्ति जो आर्थिक रूप से खुद के मंचीय कार्यक्रमोंका आयोजन करने के लिए सक्षम है, अपने आपको लोगों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता है। संगीत जगत में एक तरह की अप्रिय स्पर्धा का अनुभव हर कलाकार ले रहा है। आधुनिकता के इस युग में अधिक से अधिक श्रोताओं को आकर्शित तथा आनंदित करने के उद्देश्य से संगीत के शुद्ध स्वरूप को तोड मरोडकर अन्य विधाओं के साथ मिश्रण कर प्रस्तुत किया जा रहा है। इससे संगीत के मूल स्वरूप केा

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 02, July-December 2021
http://swarsindhu-pratibha-spandan-org
© The Author(s) 2021
A UGC CARE listed Journal

अपूरणीय क्षति पहुंच रही है। परंतु व्यावयायिकता की आड में इन प्रयोगों को स्वीकारा जा रहा है। इंटरनेट के माध्यम से विविध आभासी मंच तैयार हो रहें है, जिनके द्वारा कलाकार की कला प्रस्तुती एक आम बात हो चुकी है।

निष्कर्ष

मंचीय संगीत का प्राचीन काल से आधुनिक काल तक का विकास देखा जाए, तो यह ध्यान में आता है, कि संगीत का उपयोग प्राचीन काल में स्वंतत्र प्रयोग के लिए ना होकर अर्थात साध्य के रूप में ना होकर साधन के रूप में ही हुआ। मंदिरोंमें भगवत पूजा के समय नृत्य के साथ किया जाता था। मंदिरें में विशष रूप से निर्मित रंगशालाओं मे यह प्रस्तुति होती थी। यज्ञादि विधी में सामगान के रूप में ऋचाओं का गायन होता था। पंचमहाभूतों का आवाहन करने के लिए इन ऋचाओं की निर्मिती की गयी थी। नाटयशास्त्र में रंगमंच पर नाटय की प्रस्तुति के समय संगीत का उपयोजन किस प्रकार करना चाहिए इस विषय पर सर्वप्रथम संदर्भ प्राप्त होते है। यहीं से परावर्ती विद्वानों नें भी अपने अपने ग्रंथों में संगीत विषय पर विशेष लक्ष केंद्रित कर संगीत संबंधी विविध आयामें पर विस्तृत विवेचन किया। आगे चलकर रंगमंच या नाटय में संगीत की संकल्पना पूर्णरूप से विकसित हुई। मध्यकाल तथा आधुनिक काल तक रंगसंगीत से संबंधित लोक संस्कृति में तथा शिष्ट संगीत के क्षेत्र में भी स्वतंत्र रूप में विकास हुआ। इन संगीत प्रकारों के वैशिष्टय तथा उनके प्रस्तुति की शैली के अनुसार रंगमंच प्रस्तुति के उनके प्रारूप निर्माण हुए और उसी आधार पर उनका विकास हुआ। लोक संस्कृति में लोकनाटय की प्रस्तुति में संगीत का उपयोजन महत्त्वपूर्ण है। भारत के विविध प्रांतों में विकसित विविध प्रकार के लोकनाटय प्रकारों में आवश्यकतानुसार नाटक के साथ संगीत का उपयोग नाटयमंच पर किया गया। दूसरी ओर रंगसंगीत संगीत नाटक के रूप में मराठी, गुजराती तथा पारसी रंगभूमी के आधार से पूर्ण रूप से विकसित हुआ। इस संगीत को नाटक के माध्यम से रंगमंच पर प्रस्तुत करने के प्रयास में लोकप्रिय संगीत, शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, लोकसंगीत आदि सभी संगीत की विधाओंका मुक्त प्रयोग रंगमंच के माध्यम से किया गया और इससे इन सभी विधाओं को लोकप्रियता प्राप्त हुई और इनका प्रचार प्रसार हुआ। शास्त्रीय संगीत को भी इन नाटकों में आसान रूप में प्रस्तुत किया गया। आगे चलकर शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमोंका भी बडी मात्रा में होने लगा। संगीत नाटकों में नाटय की अहम् भूमिका होती थी जिसे श्रोताओंतक प्रभावी रूप से पहुंचाने के लिए संगीत का उपयोजन किया जाता था। परंतु आधुनिक काल में संगीत के कार्यक्रमों के स्वतंत्र रूप से मंचन होने लगे है। इससे पूर्व संगीत के राजाश्रय काल में किसी विशेश अवसर पर कलाकारों केा आमंत्रित कर उनकी कला का प्रदर्शन किया जाता था, जिसमें केवल आमंत्रित लोगों को ही उपस्थिती की अनुमति थी। परंतु आज संगीत को लोकाश्रय प्राप्त होने के बाद संगीत के मंचिय कार्यक्रमों की संख्या काफी मात्रा में बढ चुकी है। तकनीकी विकास के कारण आभासी मंच द्वारा भी संगीत की विविध विधाओं को प्रस्तुत किया जा रहा है। इस प्रकार रंग संगीत से लेकर मंच संगीत तक का संगीत का यह विकास अत्यंत सकारात्मक तथा विविधता से परिपूर्ण है, जिसके कारण संगीत का मूल उद्देश प्रस्तुतीकरण की आपूर्ती हो रही है।

संदर्भसूची

दीक्षित, सुरेन्द्रनाथ (1976) भरत और भारतीय नाटयकला, राजकमल प्रकाशन
स्वतंत्र, डा. शर्मा (2010), भारतीय संगीत: वैज्ञानिक विश्लेषण, अभिनव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
स्वतंत्र, डा. शर्मा (2010), सौंदर्य, रस एवं संगीत, अभिनव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
गुणचंद्र तथा रामचंद्र (1990), हिंदी नाटयदर्पण, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशनालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
Acharya Ratanjankar (1992), Aesthetic aspects of Indian Musical Heritage, Ratanjankar foundation, Mumbai